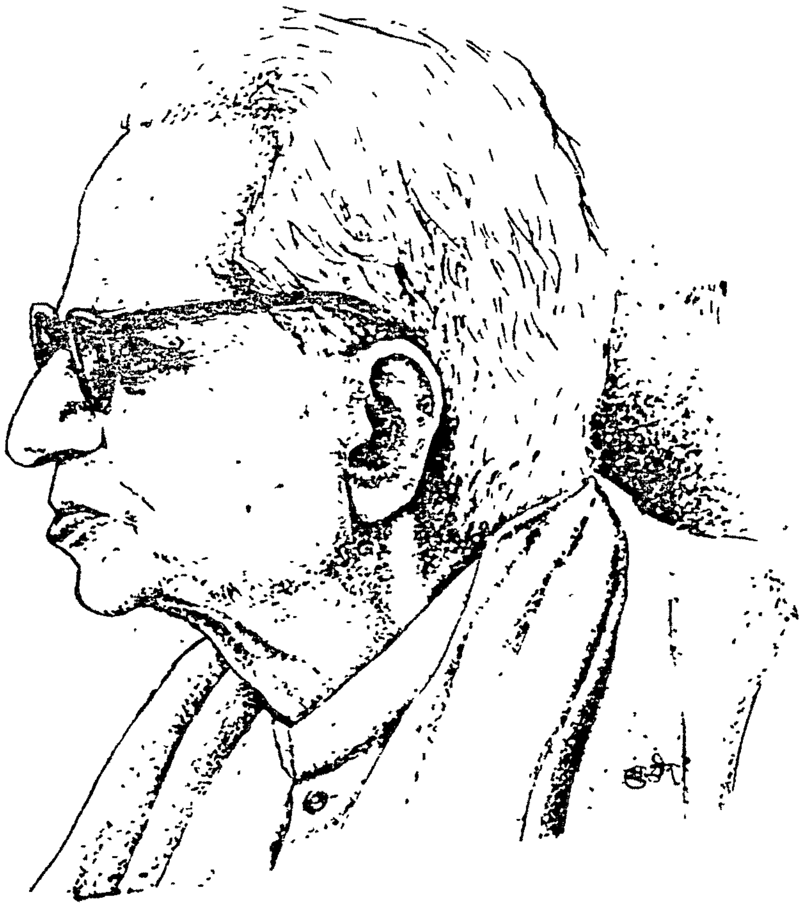

जैनेन्द्रकुमार

जन्म : २ जनवरी, १९०५ मृत्यु : २४ दिसंबर, १९८८

[illegible]

[illegible]

১) [illegible]

২) [illegible]

अध्याय पहला

उपन्यासकार जैनेंद्र ।

व्यक्तित्व :

ऋषम आश्रम हस्तिनापुर में जैनेंद्र यह नाम मिला । मूल नाम आनंदीलाल था । जन्मतिथि २ जनवरी १९०५ मानी जाती है । जैनेंद्र का जन्म उत्तर प्रदेश के अलिगढ जिला स्थित कौडियार्गंज स्थान में हुआ । माता का नाम रामदेवीबाई था । पिता का नाम था प्यारेलाल । जैनेंद्र यह उनकी तीसरी संतान थी । बडी दो बहनें थीं । पिता को यह मालूम था कि जैनेंद्र उनकी मृत्यु की सूचना थी, और वे १९०७ में गुजरे । जैनेंद्र के मामा महात्मा भगवानदिन थे । वे अपने मामाजी को ही पिता मानते थे, यहाँ पंद्रहवें साल तक रहे । रजई की सुरासोंसे वे देखते थे । मामाजी के जुतों पर बैठते थे । उनके साथ काशी यात्रा की थी । जैनेंद्र जी का विवाह भगवतीदेवी से १९२९ में हुआ । १९११ पर उन्होंने हस्तिनापुर में शिक्षा के लिए ऋषम गुरूकुल आश्रम में प्रवेश किया । १९१९ में पंजाब में मैट्रिक परीक्षा पास की । उनका विवाह १७६ रूपयों में हुआ । उनके जीवन में कुछ दार्शनिकता भी थी । उदा. भूख लगती तो वे माँ से कहते पेट में दर्द हो रहा है । और यही भूख उनके प्रत्येक उपन्यासों में है । उनके उपन्यास की नायिका आत्मपीडन को प्रकट करती है । मामा उनको बंदर नाम से पुकारते थे । टट्टीघर में फिनाईट देखकर दूध माँगने लगे । शतरंज और पढाई में प्रथम आते थे । दसवें ग्यारहवें साल में गुरू से एक चपत मारी गयी तो इस बेगुनाह का अपमान हुआ ।

इनके जीवन में आत्मसम्मान था, अहंभाव भी था। इनके उपन्यास में व्यक्तिवाद है। १९२० में बनारस विश्वविद्यालय में गये लेकिन १९२१ में महात्मा गांधी के आदेशानुसार शिक्षा छोड़ी। १९२१ में राजनीति में आये। १९२३ में नागपुर में संवाददाता बने। जेलयात्रा भोगी। १९२७ में मामा के साथ कश्मीर गये। १९३० में दांडी यात्रा की। १९३२ में आंदोलन के कारण साढे सात मास की सजा हुई। यहाँ पर उन्होंने लाठीमार के कारण राजनीति से सन्यास ले लिया। साथ-साथ साहित्यिक कार्य जारी रहा। १९२८ और १९२९ में फाँसी नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। १९२९ में ` परख ` नामक उपन्यास लिखा। जिसे ५००-०० रुपये का पुरस्कार मिला। इसके पहले की फर्नीचर की दुकान बंद की। १९३२ में ` सुनीता ` १९३६ में ` कल्याणी `। १९३९ से १९५२ तक लेखन बंद हुआ, लेकिन वक्तृत्व पर जोर था। १९५१ में दिलीपकुमार ने ` पूर्वोदय ` प्रकाशन की स्थापना की जिससे जैनेंद्र लेखन-प्रकाशन करते थे। १९५२ में धर्मयुग में ` सुखदा ` उपन्यास धारावाही प्रकाशित हुआ। १९५२ में ही ` विवर्त ` यह उपन्यास प्रकाशित हुआ। १९५३ में ` व्यतीत ,` १९५६ में ` जयवर्धन,` १९६५ में ` मुक्तिबोध,` १९६८ में ` अनन्तर,` १९७४ में अनामस्वामी। ` अनामस्वामी ` यह ` त्यागपत्र ` का उत्तरार्ध माना जाता है।

१९३५ में प्रेमचंद्र द्वारा ` भारतीय साहित्य परिषद ` की स्थापना की। १९३६ में परिषद की स्थापना गांधीजी की अध्यक्षता में इन्दौर में हुई, जिसका पहला अधिवेशन सन १९३६ में नागपुर में हुआ। १९३९ में दिल्ली की परिषद में भाग लिया। जैनेन्द्र युनेस्को कार्यकारणी के प्रथम सदस्य रहे। (१९५४ युरोप) भारतीय साहित्य अकादमी के सदस्य रहे। १९५६ में चीन, १९६० में रूस यात्रा। १९६३ में लंका में भारत के प्रतिनिधि रहे। आपको १९७० में डी.लिट्. की उपाधि से विभूषित किया तथा १९७६ में पद्मभूषण उपाधि से गौरवित किया गया।

उनके उपन्यासों में नारी को महत्व दिया है। पात्रों की मानसिकता का चित्रण जैनेन्द्र के उपन्यासों में हैं। पात्रों में विचित्र प्रकार की आस्तिकता है। ईश्वरी उपासना है। अहिंसा शांति और सत्य की प्रभावोत्पादकता उपन्यासों में हैं। जीवन मृत्यु, सामाजिक मूल्य और आर्थिक मूल्यों से विद्रोह किया है। जैनेन्द्र व्यक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। उन्हें समाज के बंधनों में रहना पसंद नहीं है। अंतरात्मा का सत्य उन्हें प्रिय हैं।

जैनेन्द्र की चिंतनशीलता या मनोभावना उनके उपन्यासों में है। जैनेन्द्र का व्यक्तित्व जहाँ एक ओर अत्यन्त सादगी से परिपूर्ण है, वहीं उनमें अहंवादिता भी है, जिसका प्रभाव उनके लेखन में (विशेषकर उपन्यासों में) देखा जा सकता है। पर यह अहम्मन्यता उन में सत्य के प्रति उनके हार्दिक उत्सर्ग और स्वपीडन-बोध के स्तर पर विकसित हुई प्रतीत होती है क्योंकि उनका समस्त जीवन संघर्षों से भरा रहा है, इसलिए उनके कृतित्व के मूल में भी अन्त: संघर्ष परिलक्षित रहता है। इसका कारण यही रहा है कि वे प्रारंभसे ही कल्पनाशील एवं भावुक रहे हैं। भावुकता ने ही उनकी जीवनवृत्ति की पारस्परिक रागात्मकता को उन्नत बनाया है और इस में ` अहं ` पीछे नहीं छूट सका है। परन्तु उनके साहित्यकार ने सृजनधर्मिता के स्तर पर इस ` अहं ` को ` द्वंद्व ` के स्तर पर भोगने का अवसर दिया है।

जैनेन्द्र मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषक कथाकार है। यही कारण है कि उन्होंने हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि को नया आयाम दिया है। वे अपने उपन्यासों में बाह्य जगत की कथा के स्थान पर पात्र के अन्त: जगत और उसकी मानसिक कुंठा तथा घुटन के विश्लेषण पर जोर देते हैं। उनके संपूर्ण साहित्य में अहंकार और प्रेम का, स्पर्धा और समर्पण का संघर्ष की ही निरूपित हुआ है और अपनी विशिष्ट अस्तिकता को उन्होंने अपने उपन्यासों में कलात्मक

निर्देश भी दिया है । आत्मपीडन और आत्मकथा के अकेले चित्रकार के दृष्टिकोन से वे हिन्दी उपन्यास जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं । वे अपने उपन्यासों में मनोविश्लेषण के स्तर पर पात्रों की अत्यल्प संख्या पर ही विश्वास करते हैं तथा उनके ही जीवन के विविध पहलुओं और समस्याओं को वे वैयक्तिक स्तर पर उठाते हैं तथा जीवन के प्रति उनकी गहन दृष्टि का विश्लेषण करते हैं । इस वैयक्तिकता के समाविश के कारण उनके उपन्यास रचना के स्तर पर सामाजिक जटिलताओं का परिहार भी व्यक्ति स्तर पर ही करते हैं क्योंकि उनका विचार है कि सामाजिक जीवन व्यक्ति के माध्यम से ही मूर्तरूप ग्रहण करता है । उनके उपन्यासों में पात्र बाह्य जगत् का न रहकर अन्तर्मुखी हो उठता है और उसकी प्रवृत्ति के मूल में उपन्यासकार का ध्यान व्यक्ति की अन्तवृत्तियों को उजागर करने में ही अधिक रहता है । जैनेंद्रकुमार की मृत्यु २४ दिसम्बर १९८८ को हुई ।

<u>निष्कर्ष</u> -

अपने उपन्यास - सृजन के स्तर पर जैनेंद्र ने व्यक्ति और समाज को नये मानव मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है । और उन पात्रों के माध्यम से व्यक्ति को सामाजिक जीवन से निकालकर उन्होंने अलग ` व्यक्ति ` के ` स्व ` पर विश्लेषित करने की चेष्टा की है । यही कारण है कि उनके उपन्यासों पर पलायन वृत्ति का आरोप भी किया जाता है । परन्तु यह आरोप एकांगी पक्ष से उद्भुत है । आरोपकर्ता यह भूल जाता है कि वे सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण भी वैयक्तिक स्तरपर ही करते हैं । यह पलायनवादी वृत्ति का नहीं अपितु जैनेंद्र की विशिष्ट औपन्यासिक शिल्प से प्रादुर्भूत अभिव्यक्ति का परिणाम है ।

<u>कृतित्व : जैनेंद्र के उपन्यासों का संक्षिप्त विवेचन</u> -

१) परख - रचनाकाल १९२९ ई.।

' परख ' उपन्यास जैनेंद्रकुमार का १९२९ में लिखित प्रथम उपन्यास हैं, जिस पर उन्होंने ५००-०० रुपयों का पुरस्कार प्राप्त किया । इस उपन्यास में सत्यधन, कट्टो, बिहारी और गरीमा ये इने गिने पात्र हैं । कट्टो एक बालविधवा है । उसे पढाने में, बी.ए. पास सत्यधन, जो आगे चलकर वकालत करनेवाले हैं - सहायता करते हैं । सत्यधन और बिहारी दोनों घनिष्ठ मित्र हैं । सत्यधन आदर्शवादी है तो बिहारी व्यावहारिक । कट्टो सत्यधन से निश्चल प्रेम करती है, इसलिए विधवा होने के बावजूद स्वयं को सधवा समझती है । इसलिए मेले से एक सिंदूर की डिबियाँ और सस्ता दर्पण वह उस दिन ही खरीदती है । परन्तु बिहारी के साथ कश्मीर यात्रा पर जाने के पश्चात बिहारी की बहन गरीमा की सुंदरता के प्रति सत्यधन आकृष्ट हो जाता हैं । होनहार वकील सत्यधन बिहारी के बाबू की निहागों में जँचता है, इसलिए गरीमा को मिलनेवाली जायदाद का आकर्षण दिखकर वे उसे विवाह के लिए राजी करते हैं । और सत्यधन गरीमा के साथ विवाह निश्चित कर डालता है । पर भीतर ही भीतर कहीं वह स्वयं को अपराधी मानता है । इसलिए बिहारी पर कट्टो को मनाने की जिम्मेदारी सौंप देता हैं । सत्यधन और बिहारी दोनों कश्मीर से वापस आते हैं । सत्यधन के गाँव और वहाँ बिहारी का कट्टो से परिचय हो जाता है । बिहारी सत्यधन और गरीमा के विवाह की बात कट्टो को बता देता हैं; और तब से जानता है कि कट्टो एक ऐसा रत्न हैं, जिसे सत्यधन ने धूलि में फेंक दिया है । प्रेम और त्याग की प्रतिमूर्ति कट्टो के प्रति बिहारी स्वयं आकृष्ट हो जाता है । कट्टो और बिहारी दोनों समाजसेवा में जीवन यापन करने का निश्चय करके अलग अलग राह चले जाते हैं । बिहारी की संपत्ति कट्टो और बिहारी दोनों सत्यधन को अर्पित करते हैं ।

जैनेंद्र के उपन्यास की नायिका कट्टो एक आदर्शवादी नायिका है। कट्टो की खुशी सत्यधन की मनोकामना पूर्ण करने में, सत्यधन को विवाहित देखकर आनंद मानने में कट्टो एक प्रकार से आत्मपीडा भोग रही हैं, और इसी आत्मपिडन को बढाने के लिए शायद कट्टो उदात्त-प्रेम के आदर्श में बिहारी से विवाह भी कर डालती है। जैनेंद्र ने कट्टों में बुध्दि और हृदय के द्वंद्व में व्यक्ति स्वातंत्र्य और समाज विधान की कठोरता को साकार किया।

सुनीता : रचना काल १९३५ ई.।

सुनीता लेखक का एक बहुचर्चित उपन्यास है। सुनीता उपन्यास की नायिका है। सुनीता के पति श्रीकांत है और श्रीकांत का मित्र और सहपाठी हरिप्रसन्न। हरिप्रसन्न एक क्रांतिकारी युवक है। अपने पारिवारिक जीवन के बीच में हरिप्रसन्न को भुला डालना श्रीकांत के लिए असंभव है। इसलिए श्रीकांत हरिप्रसन्न को अपने घर ले आते हैं और हरिप्रसन्न के मन की कामकुंठा को तोडकर उसे सामान्य मनुष्य बनाने का प्रयत्न करने के लिए सुनीता को आग्रह करते हैं। सुनीता अपने पति का कहना स्वीकार कर लेती है और हरिप्रसन्न को अपनी सुंदरता और प्रभाव से प्रभावित करने लगती है। हरिप्रसन्न नारी नामक चीज से अपरिचित था, धीरे-धीरे सुनीता के प्रति आकृष्ट हो जाता है। दोनों का संपर्क बढाने के लिए श्रीकांत विशेष रुप से क्रियाशील हैं। एक समय जब श्रीकांत बाहर गाँव गये हुए हैं, हरिप्रसन्न सुनीता को क्रांतिकारी कार्य का परिचय कराने के लिए, रात के समय चला जाता है और एकांत पाकर सुनीता को समूची प्राप्त करने की इच्छा उसके मन मे निर्माण हो जाती है। हरिप्रसन्न के मन की गाँठ खोलने के लिए सुनीता उसके सामने विवस्त्र हो जाती है, पर उसे देख हरिप्रसन्न लज्जित हो जाता है। अकेली घर लौटने पर सुनीता श्रीकांत के सामने सत्य बता देती है। परन्तु श्रीकांत हरिप्रसन्न के मन की कुंठा को नष्ट करने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है।

जैनेंद्र ने इस उपन्यास में पति परायण पत्नीत्व और प्रेयसित्व का आंतर-विरोध स्पष्ट करते हुए पति के मित्र की कुंठा से मुक्ति करने के लिए सुनीता के देहसमर्पण की उदारता चित्रित की। दूसरी ओर हरिप्रसन्न अहं और उच्च अहं के संघर्ष में घिरा दिखाया है। इस संघर्ष से हरिप्रसन्न के मन मे दमित यौवनाकर्षण का सुनीता की निर्वस्त्रता से नाश किया। इस उपन्यास को रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ' घरे-बाहरे ' उपन्यास से प्रभावित माना गया है। ऐसा लगता है घर और बाहर की नारी की जो समस्या है, उसके स्थान पर पति पत्नि के बीच का आपसी अजनबीपन समस्या बन गया है। जिसका समाधान बाहरी तत्व हरिप्रसन्न के रूप में मिलता है।

त्यागपत्र : रचनाकाल १९३८ ई.।

' त्यागपत्र ' जैनेंद्र का तृतीय लघु आकारिक उपन्यास है। घर और बाहर की समस्या को लेकर शिल्प और नारी मूल्य की दिशा में यह जैनेंद्र का नया प्रयोग है। नवीनता के स्तर पर ' त्यागपत्र ' एक आत्म कथात्मक उपन्यास है। सर एम. दयाल अर्थात् प्रमोद अपनी मृणाल बुआ की मृत्यु से अवसन्न होकर अपनी चीफ जजी से त्यागपत्र देता है, क्योंकि अपनी आंतरिक चेतना और परिस्थिति की असहनीयता के चरम बिंदु पर पहुँचकर वह अत्याधिक संवेदनशील बन जाता है, और अपनी बुआ की मृत्यु के लिए अपनी असमर्थता को जिम्मेदार समझता हैं।

प्रमोद की बुआ मृणाल अनिंद्य सुंदर हैं। बचपन से ही मातृपितृहीन हो गयी है, इसलिए भाई और भावज के घर रहने के लिए आ गयी है और उनके कठोर अनुशासन में असहनीय वेदना सह रही है। स्कूल जाते जाते अपनी सहेली के भाई से उसे प्रेम हो जाता है। परन्तु भाभी इस बात को पसन्द नहीं करती। इसलिए बड़ी निर्दयता से उसकी पिटाई कर देती है। इसके पहले

मृणाल ने स्कूल में मास्टरजी से पिटवा लिया है। लेकिन तब अपनी सहेली की गलती को छिपाने के लिए वह खुद अपराधी बन गयी है। पर भाभी जब उसका स्कूल बंद कर देती है तो मृणाल का विद्रोह बढता है और आत्मपीडन भी। उसका विवाह भाई के द्वारा एक अधेड उम्र के विधुर से निश्चित किया जाता है। और आत्मपीडा को सहने में ही विद्रोह दिखानेवाली मृणाल पतिगृह को स्वर्ग समझकर ससुराल चली जाति है। पति के सामने जब अपने अतीत का परिचय प्रामाणिकता से दे देती है, तो पति के द्वारा भी निर्दयता से पीटी जाती है। परित्यकता बनती है। फिर मृणाल उसके रूप पर मुग्ध एक कोयलेवाले का आश्रय ले लेती है, ये कोयलेवाला भी एक दिन उसे छोड देता है। घर आने के लिए प्रमोद का निमंत्रण मृणाल ठुकरा देती है और अपने गर्भ को जन्म देने के लिए मिशन अस्पताल की सहायता स्वीकार कर अधिक आत्मपीडा का अनुभव करती है।

इसके पश्चात् मृणाल का अधिकाधिक पतन होता रहता है और वह ऐसी नारियों की बस्ती में पहुँचती है जहाँ पीतल को पीतल समझा जाता है और निम्न वर्ग का दरिद्रता से भरा यंत्रणापूर्ण जीवन जीते हुए मृणाल को मृत्यु का सामना करना पडता है। वहाँ भी मृणाल और उसके साथ रहनेवाली पतिता नारियों की मदद करने के लिए प्रमोद जा पहुँचता है, परन्तु न केवल मृणाल उसकी आर्थिक सहायता अस्वीकार करती है बल्कि सफेद पोष जीवन जीने के लिए वापस लौटने को बाध्य करती है।

मृणाल का चरित्र सामाजिक द्रोह के समातान्तर अतृप्ति और आत्म-पीडन से अभिशप्त हैं। व्यक्तिवादी चेतना से युक्त मानसिक अधोगति के स्तर पर मृणाल का आत्मपीडन भोगना यथार्थता का प्रतीक है। मृणाल के माध्यम से जैनेंद्र ने फिर घर और बाहर की समस्या को उठाया है। मृणाल न घर तोडना चाहती है न समाज। समाज की मंगलाकांक्षा में समाज से अलग होकर वह खुद टूट जाती हैं।

देवराज उपाध्याय के अनुसार त्यागपत्र एक विचित्र मनोवैज्ञानिक दस्तावेज है । जिस में मृणाल एक अस्वीकृत, अनावश्यक नारी के रूप में चित्रित है ।

कल्याणी : रचनाकाल १९३९ ई.

`कल्याणी ` आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है । जिस में पात्रोल्लेख की प्रविधि अपनायी गयी है,। कल्याणी की कथा के निवेदक और प्रस्तुतकर्ता वकील साहाब है ।

श्रीमती कल्याणी असरानी एक महत्वाकांक्षी डॉक्टर है । कल्याणी अपने छात्र जीवन में विदेश के एक युवक से प्रेम करने लगी थी । वर्तमान में वही प्रेमी देश का प्रिमीयर है । कल्याणी जब वापस लौटती है तो दुष्ट घटना चक्र में फँसकर डॉक्टर असरानी से विवाह करने के लिए बाध्य हो जाती है, और यहाँ से उसके जीवन की असफलता का प्रारंभ हो जाता है । कल्याणी अपने असफल दांपत्य जीवन में पत्नी के रूप में पति के नीचतापूर्ण कृत्यों को सहन करती रहती है । डॉ. असरानी एक व्यावसायिक बुध्दि का डाक्टर हैं, जो कल्याणी को पत्नीत्व से प्रेयसित्व की ओर ले जाने के लिए प्रिमीयर को घर पर दावत देता हैं । धीरे धीरे पत्नीत्व को छोडना न चाहनेवाली कल्याणी पति से संघर्ष करती हुई घर और बाहर की समस्या का उत्तर खोजती हुई स्वयं ` मृणाल ` की भाँति टूटती है ।

अपने घर को बचाने की चेष्टा में लीन कल्याणी ` त्यागपत्र ` की ` मृणाल ` का दूसरा संस्करण लगती है । उसका पति शंकालु है और पत्नी के करियर में बाधक है । इस ` करिअरिज्म ` के स्तर पर कल्याणी एक विद्रोहिणी नारी के रूप में अपना निजत्व मिटाकर भी अपने पातिव्रत्य का निर्वाह करना चाहती है । और इसके फलस्वरूप निराशा, कुंठा, वितृष्णा

अपमान और अतृप्ति भोगती है। इसलिए देवराज उपाध्याय ने कल्याणी में मरण प्रवृत्ति को क्रीय देखा है।

संपूर्ण कथानक में गृहिणी और डाक्टरनी, प्रिया और प्रगल्भा, अतीत और वर्तमान, ईश्वर भिक्षा और भौतिक लिप्सा इनके बीच का मध्यम मार्ग खोजने में असफल कल्याणी के जीवन का उतार और चढाव चित्रित है।

सुखदा : रचनाकाल १९५२ ई.।

" सुखदा " विश्रांति काल के पश्चात् का पहला उपन्यास है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया। उपन्यास की नायिका सुखदा जो एक अस्पताल में तपेदी के बीमारी से ग्रस्त होकर रुग्ण शैय्या के ऊपर पडी हुई है, और अपनी आपबीती बता रही है।

सुखदा एक अच्छे परिवार की युवती थी। जिसने अपने मन में पति और परिवार संबंधी बहुतसे सपने पाल रखे थे। परन्तु उसका विवाह कान्त नामक एक ऐसे युवक से संपन्न हुआ जिसकी आमदनी कुल १५०-०० रुपया से अधिक न थी।

विवाह के प्रारंभिक काल में पति के प्रेम के प्रभाव में सुखदा सुखी थी। पर जैसे ही उस प्रारंभिक प्रेम के प्रभाव से मुक्त हो गयी उसे जीवन की वास्तविकता का अनुभव हुआ। और वह स्वयं को खोखला महसूस करने लगी। स्वप्न और सत्य के फर्कने उसके जीवन को दुष्कर बना लिया था।

गृहस्थी की आर्थिक विषमता पर पति पत्नी में कटुता फैलने लगी। सुखदा के पति का शांत स्वभाव और अंकुश रहित व्यवहार इस कटुता को बढाने लगा। फिर एक दिन एक क्रांतिकारक नौकर के रूप में सुखदा के घर आकर रहने लगा। कुछ काल के पश्चात् यकायक नौकर ने नौकरी छोड दी। और वह पुलीस के द्वारा पकडा गया।

फल-

जो सुखदा पति के व्यवहार के स्वरूप उच्छृंखल बन गयी थी, उसके मन में संदेह उत्पन्न हो गया कि पति ने ही नौकर को पकड़वाया है, और उन दोनों का संघर्ष दिन ब दिन बढ़ने लगा। सुखदा के लिए पति के व्यक्तित्व और जीवन में समाहित होना असंभव हुआ। फिर यह असंतुष्ट नारी बाहर की ओर आकृष्ट होने लगी।

इसी समय एक और क्रांतिकारी लाल के क्रांतिकारी कार्य से और व्यक्तित्व से सुखदा प्रभावित हो गयी। अपनी घर की उकताहट को दूर करने के लिए लाल के साथ सुखदा भी क्रांतिकारी कार्य में सहयोग देने लगी, और घर के बाहर निकल पड़ी। परन्तु क्रांतिकारी दल के प्रमुख हरिदा ने सुखदा को वापस घर भेज दिया। जो सुखदा घर छोड़कर बाहर चली गयीथी, वो क्रांतिकारी एवं सार्वजनिक कार्य करते हुए भी असंतुष्ट ही रही।

घर का तो हाय हो ही गया परन्तु बाहर भी संतोष न मिल सका। इसलिए सुखदा में हम ऐसी नारी का चित्र देख सकते है जो पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन मे सामंजस्य खोजने का प्रयत्न कर रही है। परन्तु उस में सफल न होने के कारण निराशा का अनुभव करते हुए आत्मपीडा भोग रही है। यह नायिका मूलत: नैराश्यपूर्ण मनोव्यथा ग्रसित नायिका है। जो पति प्रेम से अतृप्त रहकर परपुरूष के प्रेम की अभिलाषिणी बन गयी। परन्तु उसकी आत्मपीडा ने जीवन संघर्ष में उसे हरा दिया और वह मृत्यु मार्ग का यात्री बन गयी।

विवर्त : रचना काल १९५३ ई.

`विवर्त` वर्णनात्मक शैली में लिखा गया जैनेंद्र का प्रथम नायक प्रधान अथवा पुरूष प्रधान उपन्यास है। उपन्यास का नायक जितेन संपादकीय विभाग में काम करता है, और रिटायर्ड जज की संतान भुवन मोहिनी के आकर्षण में बंधा

हुआ है । दोनों के प्रेम में गरीब और अमिरी का अंतर बाधा बन जाता है । और भुवन मोहिनी का विवाह इंग्लैंड रिटर्न बैरिस्टर नरेशचंद्र के साथ संपन्न होता हैं ।

जितेन एक असफल प्रेमी बनकर शहर छोड देता हैं और क्रांतिकारी बन जाता है । एक रात ट्रेन के उलट जाने के कारण वह भुवनमोहिनी की घर में आश्रय ले लेता है । और बीमार हो जाता है । अपने क्रांतीदल के आवश्यकता के लिए धनप्राप्ति के लिए वह भुवनमोहिनी के आभूषणों को चुरा लेता हैं । जितेन आभूषणों के बदले धन की माँग करने के लिए अपने साथियोंद्वारा भुवनमोहिनी को गुप्त स्थान पर बुलाता है, जहाँ भुवनमोहिनी जितेन की कुंठा दूर करने के लिए आत्मसमर्पण करती है उससे जितेन को पुलीस के सामने आत्म-समर्पण करने की प्रेरणा मिलती है ।

जितेन का दमित काम ही प्रेम की असफलता के कारण उसे क्रांतिकारी बना डालता है । तो दूसरी ओर अपने विवाह की असफलता के कारण भुवन-मोहिनी भी निजी संघर्ष में क्षीण हो रही है ।

` विवर्त ` की कथा ` सुखदा ` की कथा के समान ही प्रेम की असफलता, आर्थिक विषमता और क्रांतिकारिता में आत्मसमर्पण आदि में समान है । जैनेंद्र के मतानुसार क्रांति समाज की नींद तोडने का अस्त्र हैं ।

यहाँ नायिका भुवनमोहिनी का अहं प्रेम को कुंठा से मुक्त करने में उदात्त बन गया ।

व्यतीत : रचना काल १९५३ ई.।

नायक ` जयंत ` के द्वारा प्रस्तुत ` व्यतीत ` जैनेंद्र का आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया और एक उपन्यास हैं ।

जयंत की प्रेमिका अनीता है, पर उसका विवाह जयंत के साथ नहीं होता। मिस्टर पुरी के साथ होता है। परन्तु अनीता विवाहित होकर भी जयंत की चिंता में लीन रहती है। जयंत एक वृत्तपत्र में सहसंपादक का काम कर रहा है। इस नौकरी से जयंत सिर्फ ७५-०० रुपये प्रतिमास वेतन प्राप्त करता है। अर्थात् उसका सहसंपादकत्व दरिद्रता का ही साधन है। इसलिए अनीता यह चाहती है कि जयंत यह नौकरी छोड दे और कहीं अन्य स्थान पर नौकरी प्राप्त करके अधिक अच्छा वेतन कमाएँ। परन्तु अनीता के ये प्रयत्न निष्फल हो जाते है। अनीता का प्रेम प्राप्त न होने के कारण असफल जयंत कुंठा का शिकार हो जाता है। न तो वह नौकरी छोडता हैं न वह भूतपूर्व प्रेमिका अनीता की इच्छा के अनुसार गृहस्थी भी बसा लेता हैं। बस अंदर ही अंदर घुटता रहता है। कुछ काल के पश्चात् जयंत के जीवन में उसकी चचेरी बहन 'चंद्रिका' का आगमन हो जाता है। और उसके प्रति आकृष्ट होकर जयंत उससे विवाह बध्द हो जाता है। और इस विवाह में उसको कोई संतोष नहीं, क्योंकि अपनी प्रेमिका अनीता को भूलना उसके लिए असंभव बात है।

इसके परिणाम स्वरूप पत्नी विमुख होकर जयंत सेना में भरती हो जाता है, युध्द में सक्रीय भाग लेता हैं, और अस्पताल में उसे दाखील कराया जाता है। वहाँ संयोग वश उसकी शुश्रुषा करने के लिए चंद्रिका पहुँच जाती है। वह उसकी बहुत अधिक सेवा करती है पर जयंत के मन में 'चंद्री' के प्रति कोई आत्मीयता नहीं उपजती। इस बात को देखकर चुप रहना अनीता के लिए असंभव हैं। इसलिए जयंत के मन की कुंठा को मिटाने के लिए उसके स्वस्थ होने पर अनीता जयंत के सामने आत्म समर्पण कर डालती है, तभी उससे जयंत विरक्त हो जाता हैं। अर्थात् जयंत के कुंठित कामभावनाओं की पूर्तता के लिए अनीता सहायक सिध्द होती है। और अपने बंधन से मुक्त कर उसकी पत्नी की ओर उन्मुख कर देती हैं।

इस प्रकार पत्नीत्व और प्रेयसित्व दोनों प्रकार के कर्तव्यों को निभाती है । ` व्यतीत ` उपन्यास में बुध्दि और हृदय या भावना और व्यवहार के संघर्ष के आलेख में जीवन की व्यस्तता का चित्रण किया गया है ।

जयवर्धन : रचना काल १९५६ ई.।

जैनेंद्रकुमार का यह उपन्यास उनकी निरंतर विकसित दार्शनिक चेतना और गांधीवादी विचारधारा की परिणति कहा जा सकता है । यह एक बहुचर्चित उपन्यास है । जिस में डायरी शैली का अवलंब किया गया है । एक अमरिकी पत्रकार बिल्बर्ट शोप्डन हुस्टन के द्वारा ` जयवर्धन ` के जीवन की झाँकी के रूप में इसका कथानक प्रस्तुत किया गया है ।

` जयवर्धन ` एक ऐसा राष्ट्राधिपति है, जिससे विरोध जन्य परिस्थितियों का आकलन हो गया है । फिर भी स्वार्थीन रहकर वह राजसत्ता को निर्मूल करना चाहता है । ` जयवर्धन ` निजत्व से राजनीति को अधीक महत्त्व नहीं देता । इसलिए सर्व दलीय सरकार बनाने के लिए अपने पद का त्याग कर राष्ट्र के सभी दलों का आवाहन करता है ।

जयवर्धन स्खलित व्यक्तिवादी पदाधिकारी है, जो अन्य दलों के स्वार्थ के संघर्ष के समय निष्क्रिय दृष्टा बनकर अकर्म राजतंत्र की विधि और दलीय संघर्ष को समस्थिति मे लाना चाहता है । इस हेतु राष्ट्राधिपति के पद का त्याग भी कर देता है ।

जयवर्धन के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू है, वह विवाह संस्था में विश्वास नहीं रखता है, उपन्यास का प्रधान स्त्री पात्र इला नित्य उसके संपर्क में आता है । इला के पिता आचार्य इसका विरोध करते हैं । भारतीय संस्कृति के एक पुजारी चिदानंद भी इला के कारण जयवर्धन के विरोधियों में समाविष्ट होते हैं ।

जयवर्धन के पदत्याग के पश्चात् इला के पिता जयवर्धन से विवाह करने के लिए इला को अनुमति दे देते हैं पर उसी रात जयवर्धन गायब हो जाता है ।

जयवर्धन के प्रेम और विवाह का जो आनंद जैनेंद्र ने चित्रित किया हैं, उसी से जयवर्धन के निजत्व का निर्माण दिखाया है । इस प्रकार उपन्यास में प्रेम, विवाह, राजनीतिक पदत्याग, आदि से संघर्ष करनेवाले नायक के व्यक्तित्व का निर्माण साकार हो गया है ।

मुक्तिबोध : रचनाकाल १९६५ ई.।

' जयवर्धन ' के बाद १० वर्ष के पश्चात् लिखा गया उपन्यास जैनेंद्र के राजनीतिक और सामाजिक बोध को और उनके जीवन दर्शन को उजागर करता हैं ।

यह उपन्यास भारत की केन्द्रीय सत्ता में होनेवाले विशिष्ट परिवर्तनों की आवश्यकता और प्रतिक्रिया इनका एक जीता जागता आलेख हैं ।

' मुक्तिबोध ' का नायक ' सहाय ' एक कॉंग्रेस सदस्य और मन्त्री होने के बावजुद गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित था । अपने दल में पदलिप्सा की होड देखकर और गांधीवादी सिधान्तों के विरूध्द आचरण देखकर उसका मन पद विमुख बन गया । अत: वह अपने पद का त्यागपत्र देने का निर्णय घोषित करता है । उसके निर्णय की घोषणा से ही उसका परिवेश आप्त और मित्रजन विचलित हो उठते हैं । और पारिवारिक सदस्य क्षेत्रीय प्रतिनिधि प्रस्तावित मंत्रीमंडल के सहयोगी आदि सहाय से सदस्य बने रहने पर तथा मन्त्रीपद न छोडने पर जोर देने लगते है, क्योंकि उनके मतानुसार व्यक्ति की अपेक्षा पद की प्रतिष्ठा अधिक होती है । इसलिए सहाय त्यागपत्र न दे तो दल की राजनीति को सुविधाजनक रहेगा । अपने निर्णय का विरोध देखकर ' हाँ ' या

CARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR.

` ना ` के द्वंद्व में आंदोलित होने लगता है। और आत्मनिर्णय की समस्या का शिकार हो जाता है।

उसकी पत्नी, पुत्री और जामात, पुत्री की सहेली, उसका बेटा, उसके मित्र और मंत्रीगण आदि का दबाव वह अनुभव कर लेता है। उसकी भूतपूर्व प्रेयसी ` नीलिमा ` भी सहाय को अंतरमुख बना डालती है और सूचित करती है कि मन्त्रीपद छोडना प्राप्त परिस्थितियों से पलायन करना है।

थोडे में जैनेंद्र ने हमेशा की घर और बाहर की विषमताओं के परे व्यक्ति के अंतर बाह का चित्रण किया। सहाय की आत्मपीडा का चित्रण उपन्यास की उपलब्धि हैं। पूरे उपन्यास का कथानक सिर्फ चार दिनों के अवकाश में घटित होता हैं।

उपन्यास के प्रारंभ में पद निवृत्ति का भाव प्रवृत्ति के लिए ही उत्पन्न हुआ है। यह दिखाना चाहते हैं।

अनन्तर : रचनाकाल १९६८ ई.।

इसे ` जयवर्धन ` उपन्यास में प्रकट विचारधारा की विकसित अथवा प्रौढ कृति कहा जा सकता है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। उपन्यास का नायक ` प्रसाद ` अपने पुत्र और पुत्रवधु को जो मधुपर्व मनाने के लिए जा रहे हैं, उनको स्टेशन पर विदा करने जाता है। और वहाँ से लौटते हुए अपने जीवन की व्यर्थता को अनुभव करता है।

व्यर्थता बोध की स्थिति में वह पलायन का मार्ग अपनाना चाहता है और अपने गुरू ` आनंद माधव ` और ` अपरा ` का प्रस्ताव सुनकर माऊँट अबु पर उनको ले चलता है। प्रसाद अंतरमुखी चेतना से ग्रस्त है। ` जयवर्धन ` और

` मुक्तिबोध ` उपन्यास के समान राजसत्तात्मक बोध के स्तर पर वह व्यक्ति मुक्ति चाहता है परन्तु अपरा के माध्यम से माऊँट अबू पर विरक्तता के स्तर पर इनव्हाॅल्वमेंट खोजना चाहता है । प्रसाद के लिए नारी का स्वेच्छाचार आतंकपूर्ण बात है ; परन्तु अपनी पुत्री ` चारू ` के नारीत्व का दूसरे के सामने समर्पण अपने घर के निर्माण के लिए योग्य समझकर उसका स्वीकार करता हैं । जिस प्रकार ` कल्याणी ` में ` तपोवन ` ` जयवर्धन ` में ` शिवधाम ` और ` मुक्तिबोध ` में ` सहाय ` की गाँव में जाकर रहने की इच्छा प्रकट की गयी है, उसी प्रकार ` प्रसाद ` ` शिवधाम ` की न केवल इच्छा प्रकट करता है, तो उसकी स्थापना भी करता है ।

यह प्रसाद का पारिवारिक स्तर पर अपने अंतर जगत से अपने बाह्य को जोड़ने का प्रयास है ।

अनामस्वामी : रचनाकाल १९७४

` त्यागपत्र ` के ` प्रमोद ` के त्यागपत्र देने के पश्चात् के जीवन का चित्रण ही इस उपन्यास में किया गया है । प्रथम एक दो परिच्छेदों में चिंतन परक विश्लेषण प्राप्त होता है और कथात्मकता नगण्य है । फिर से बारह परिच्छेद लिखकर कथात्मकता का आशय प्रकट किया है ।

प्रमोद के बालजीवन का एक साथी प्रबोध अब ` अनामस्वामी ` है । उसका एक आश्रम है, जिस में अहंकार और अहंता के ज्वार से मुक्त जीवन जीने की कल्पना साकार करने का प्रयत्न किया गया है ।

अनामस्वामी आश्रम की छोटी छोटी बातों का ख्याल रखता है, जैसे प्रमोद को उसकी बुआ मृणाल के अंत समय पर उपस्थित रहने का संकेत देना । अपनी विधवा पुत्री की बेटी ` उदिता ` को आश्रम जाने के लिए प्रोत्साहित

करता है, परन्तु ' उदिता ' अपने आध्यात्मिक गुरू शंकर उपाध्याय से प्रभावित है। शंकर और अनामस्वामी में बहुत तीव्र ईर्ष्या है, जीसका कारण रानी वसुंधरा जो शंकर उपाध्याय की भक्त है, और उन्ही के दूसरे भक्त कुमार की विवाहिता है।

रानी वसुंधरा मातृत्व प्राप्त करे इस प्रकार की इच्छा कुमार के मन मे नियोग के द्वारा शंकर से पुत्र प्राप्ति की अनुमति कुमार से वसुंधरा को मिलती है। परन्तु शंकर द्वारा वसुंधरा का समर्पण न केवल ठुकराया जाता है, अपितु शंकर उपाध्याय वसुंधरा की हत्या का कारण बन जाता है।

इसके साथ ही शंकर उदिता को अपने भतीजे के साथ मुक्त सहाचार के लिए विदेश भेजता है। और अन्त में अपने जीवन की उलझनों से त्रस्त होकर आत्महत्या कर डालता है।

उधर विदेश में उदिता अनेक प्रेमों में असफलता पाकर विवाह का स्वीकार करती है। और वापस आकर अपने गुरू शंकर का स्मारक बनाने में लीन हो जाती है।

निष्कर्ष :

जैनेंद्र ने प्रथम चार उपन्यासों में अपने चिन्तन के अनवरत् विकास का चित्रण किया है। ' परख ' उपन्यास में जो मनोविश्लेषणा है उसके साथ उपन्यासकार की उपस्थित एक ' साम्वादिक ' रूप में प्रतीत होती है। आगे के सभी उपन्यासों में जैनेंद्र ने इस प्रवृत्ति से मुक्ति पा ली है।

मन की अंतरंगता के चित्रण के स्तर पर उत्तम पुरूष शैली अपनाकर उपन्यासकार ने आत्मकथात्मकता पर बल दिया है। परख, सुनीता और विवर्त

को छोडकर किसी न किसी माध्यम से आत्मकथा के रूप में कथा प्रस्तुत की गई है ।

मन की अंतर्गता के स्तर पर उपन्यासकार ने स्व-प्रतीय वैयक्तिक जीवन दर्शन एवं जीवन मूल्यों की स्थापना की है ।

कामवासना की अनिवार्यता के स्तर पर काम के दंश से पीडित समाज को मुक्त करने के लिए स्वार्पण की आधार भूमि देकर आत्मपीडक चेतना से अहं विगलन की नवीन दिशा प्रतिपादित की है । काम अमुक्ति से प्राय: सभी पात्र पीडित हैं । और काम अमुक्ति की प्रतिक्रिया में ही जीवन के प्रति जो विद्रोहात्मक रूख है, वह रतिदान या देहदान से विगलित होता है ।

कथावस्तु की महत्ता मनोविश्लेषणा की स्थिति पर नगन्य या अल्प हो गई है और जो भी कथा आधार रूप में उपलब्ध होती है इसमें भी विश्रृंखलता ही मिलती है । सुसंगठित कथावस्तु का अभाव जैनेंद्र की विशेषता है ।

वर्णनात्मकता के स्थान पर मनोविश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में नाटकीय घटनात्मकता, पूर्वदीप्ति एवं चेतना प्रवाहात्मक शैलियों का प्रयोग किया है ।

समस्त उपन्यासों के पर्यावलोकन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि जैनेंद्र की विशिष्ट गांधीवादी सैध्दान्तिकता अपने व्यावहारिक पक्ष की विचित्र आदर्शवादी मुद्रा में व्यंजित होती है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि औपन्यासिक धारा एक सुनिश्चित कथात्मक परंपरा, अभिव्यक्ति का स्तर एवं दार्शनिक चिन्तता से परिपूर्ण है और वह अपने पात्रों की प्रतिक्रियात्मक संवेदना को अतिवाद की स्थिति तक ले जाकर छोडती है । तभी उनके पात्र वैयक्तिक अधिक हैं और सामाजिक कम ।